महामानव के दिव्य-स्पर्श

श्रीश्रीमाँ सर्वाणी

उस दिन शिवरात्रि थी। महानिशा में शिव के पूजन समापनान्त क्रिया योग के परावस्था में उपनीत होकर आसन पर साधन के लिए बैठी हूँ। प्रथमावस्था से ही मस्तकोपरि व्योम-मंडल पर मेघ गर्जन चल रहा था और उसके साथ चल रहा था श्वेत-शुभ्र वैद्युतिक झलक का खेल। यह खेल बहुत देर नहीं चला। अकस्मात् आकाश-मंडल पर भयंकर गर्जना के साथ उद्भासित हुआ उस विद्युत के भीषण झलक सदृश वज्र-आलोक! – कड़-कड़-कड़ात्! निमेष मध्य पतित हुआ एक प्रबल वज्रपात – मस्तक के 'वामा' केन्द्र में – मेरी देह को छिटकाकर फेंक दिया – असम्प्रज्ञात-निर्विकल्प-निर्बीज समाधि में बोध निमग्न हो गया। इसके पश्चात् स्वर्णिम शीतल अत्युज्ज्वल ज्योति के आह्वान से सत्ता का बोध पुनः जागृत हो उठा। सम्वित् आने के मुहूर्त में अनुभव हुआ कि मेरे सम्मुख एक सूर्य-थाल की तरह कोटि सूर्यों की ज्योति सम्पन्न कोई एक महान सत्ता का आलोक, जो मुझे आह्वान करते हुए मेरे सम्वित् को वापस लाया है। इस महासत्ता की स्वर्णिम ज्योतिसम सूर्य थाल के मध्य से देखा कि मेरे कक्ष की सारी वस्तुएं सूर्यरश्मि की चिन्मय ज्योति से आप्लुत होकर स्वर्णवर्ण प्राप्त कर चुकी है। सूर्यथाल की तरह ज्योति सम्पन्न महासत्ता की ओर ताकते हुए मन में एक जिज्ञासा का उदय हुआ – 'ये कौन हैं?' – तत्क्षणात् सूर्यथालसम स्वच्छ ज्योति क्रमशः क्रमान्वय से छोटी होने लगी एवं मेरे उस कक्ष में प्रतिष्ठित श्रीश्रीश्यामाचरण लाहिड़ी महाशय के प्रस्तर निर्मित धवल मूर्ति की ओर जाने लगी। तत्पश्चात् लाहिड़ी महाशय की मूर्ति के निकट जब पहुँची तब एक छोटे बिन्दु-ज्योति में परिणत होकर लाहिड़ी महाशय के वक्षस्थल में प्रविष्ट होते हुए अदृश्य हो गयी! और मैं सम्पूर्ण रूप से जागृत हो उठी। श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय की मूर्ति की ओर देखने पर पाया कि लाहिड़ी महाशय जीवन्त रूप में विराजमान हैं और मेरे प्रति ताकते हुए मृदुमन्द मुस्कुरा रहे हैं। मेरे अन्तर में प्रश्न का उदय हुआ – 'तब, मुझे क्या हुआ था?' तत्क्षणात् जैसे कोई एकजन अन्तर के अतल गभीर से बोल उठा – ''माँ गंगा का अवतरण हुआ हैं तुम्हारे मध्य।'' – यह प्रथम धन्य हुई मैं महामानव के दिव्य स्पर्श से।

श्रीश्रीश्यामाचरण लाहिड़ी महाशय

महामानव के दिव्याशीष माथे पर लेकर प्रायः अनेक वत्सर कट गए। इस दरम्यान मैंने कई बार उनके पवित्र स्पर्शानुभूति का अनुभव किया है। उनकी ही कर्मधारा में कर्मरत अवस्था में अवस्थान करने के समय। इसी समय एकदिन दिव्य स्वप्न देखा। देखा, मैं बाकसाड़ा में श्रीश्रीसरोज बाबा (बाबाजी महाशय) के घर गयी। वे अपने कक्ष में शय्या पर लेटे हुए थे। कक्ष का दरवाजा काँच का था एवं वह बन्द था। बाबाजी महाशय की शय्या से उठकर दरवाजा खोलने की भी शक्ति नहीं थी कारण उन्हें अस्वस्थता का भान हो रहा था। उन्होंने मुझे, कक्ष के दरवाजे के सामने खड़ी हूँ, देखकर कक्ष के भीतर से ही कहा, ''मैं ठीक हूँ। तुम्हारे साथ सब समय विराजमान रहता हूँ एवं रहूँगा भी। अब आओ।'' जब मैं उनको प्रणाम निवेदन करते हुए उनके गृह से वापस आ रही थी, तब उनके घर के मूल दरवाजे से बाहर निकलते समय देखा, दरवाजे के ऊपर एक फोटो की तरह बड़ा आईना एवं उसके मध्य श्रीश्रीश्यामाचरण लाहिड़ी महाशय बैठे हैं। मैं जब दरवाजा खोल कर उस फोटो के नीचे से बाहर निकलने जा रही थी तब हठात् फोटो के भीतर से लाहिड़ी महाशय के दोनों रक्तिम कोमल चरण नीचे की ओर उतर आये एवं मेरे वक्षस्थल पर आकर अवस्थित हो गये। उसी मुहूर्त में मैंने उनके पदयुगल को जकड़ लिया एवं जकड़ कर पैरों के उपरिभाग पर अपने मस्तक को रख दिया। एक अव्यक्त ब्रह्मचेतना का कम्पन मेरे मध्य प्रवाहित हो गया और तभी मेरा दिव्य दर्शन भी भंग हो गया। मैं स्थूल चेतना में लौट आयी। पुनः धन्य हुई मैं महामानव के दिव्य स्पर्श से। इसके कुछ माह पश्चात् ही बाबाजी महाशय ने स्वेच्छा से अपने इहलीला का संवरण किया।

इन्हीं महामानव श्रीश्रीश्यामाचरण लाहिड़ी महाशय के

चिन्मय पवित्र स्पर्श से ही अन्त:स्थित प्रज्ञा के आलोक में एकदिन उनकी प्रकृत आदिसत्ता के परिचय से अवगत हुई। वे ''ब्रह्मर्षि नारद'' थे। सत्ययुग के पुराण-परिचय में उनको ''सत्यसुकृत'' आख्या प्रदान किया गया है समग्र देवता व महामानव के महामंडल द्वारा।

महाप्रजापति ब्रह्मा के अयोनि संभवा सृष्टि की ब्रह्मतेजोदीप्त वैष्णवोत्तम पुत्रों के मध्य ''नारद'' अन्यतम हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार, ब्रह्मा के कंठ से नारद संजात हुए है। –''कंठदेशाच्च नारद:''। ब्रह्मा के कंठ को 'नरद' कहा जाता है; और 'नर्द' अर्थ से उद्घोष अथवा शब्द करना समझा जाता है। अर्थात्, कंठ से उद्घोषित नादध्वनि या 'नरद' से जात है इसलिए ब्रह्मा ने इनका नाम रखा ''नारद''। वराह पुराण में है – ब्रह्मा ने सर्वप्रथम रुद्रादि तपोधनगण, तत्पश्चात् सनकादि चतु:सन, तदनन्तर मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य, भृगु, वशिष्ठ, दक्ष एवं नारद इन दशजनों का सृजन किया। उन्होंने सनक प्रभृति को निवृत्ति धर्म में, मरीचि प्रभृति को प्रवृत्ति धर्म में एवं नारद को मुक्ति पथ पर नियोग किया था। नारद के जन्मांतर प्रवाह से देखा जाता है कि किसी एक जन्म में वह अवन्तीपुर में एक ब्राह्मण के घर में जन्मग्रहण करके 'सारस्वत' नाम से विख्यात हुए थे। सारस्वत सरोवर (पुष्कर) में तप करके वह भगवान नारायण के निकट वर प्राप्त कर देहान्त के बाद उस नारायण में ही लयप्राप्त हो गए। अर्थात्, उन्होंने 'नारायण' अवस्था में योगयुक्त होकर स्वारूप्य लाभ किया। अतएव नारद, श्रीहरि के एक रूप है, ऐसा कहा जा सकता है। नारद पितृलोक को 'नार' अर्थात् पानीय प्रदान करके ''नारद'' नाम से प्रसिद्ध हुए थे। नारद ने ''पंचरात्र'' नामक वैष्णवीय तंत्र ग्रन्थ का प्रणयन किया। श्रीमद्भागवत के मतानुसार नारद विष्णु के तृतीय अवतार कहकर परिगण्य होते हैं। इसीप्रकार विभिन्न पुराण-महापुराण में वेदव्यास श्रीकृष्ण द्वैपायन ने नारद ऋषि के जन्म-जन्मांतर के विषय में वर्णन किया है। इस कारण नारद को पुराण-पुरुष कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है। ऋक् वेद में भी पाया जाता है कि कण्व गोत्रीय महर्षि नारद एकजन ऋग्वेद के मंत्र द्रष्टा ऋषि थे। उन्होंने इन्द्र की स्तुति करके काफी ऋक् मंत्रों की रचना की थी।

ब्रह्मर्षि नारद की महिमा की कथा कहकर समाप्त नहीं की जा सकती। वैष्णव साधक शिरोमणि श्रीविष्णुपाद सिद्धान्त ठाकुर ने 'नारद' की व्याख्या करते समय राधाभाव से आविष्ट होकर कहा था –''श्याम कहे, सृष्टि की सब ही सुन्दर है, कुछ भी असुन्दर नहीं है; सब वाणी ही श्यामसुन्दर के वीणा की झंकार मात्र है। एक ही वाणी केवल आधार के भेदानुसार रूप वदलती हैं, नारद के एकतारा का हरिनाम सुनकर मेरे मध्य केवल नाना भावों का रोदन उत्पन्न होता है; कारण 'नारद' अर्थ से ही बोध होता है नाना रथ, नाना द्वार रोध कर नाना रोदन के मध्य से एवं शोधन के साज में पार कराते हैं, उस श्याम के द्वार पर, वंशी के सुर में सुर मिलाकर, उस वंशीधारी को सन्निकट में ला देते है; तभी सर्व अंग में कम्पन होता है एवं तब वंशी का सुर जैसे मानों कह देता है, ''वह श्रीहरि ही हैं,'' उनके ही तट पर एवं उनके ही घट पर तुम्हारा ही नाम रटता है। नारद का प्रेम भक्तिभाव व मुक्तिगामी कर्म, नर के साथ नारायण की सम्मिलित करने की रीति-नीति को सिद्धान्त ठाकुर ने अपने उपलब्धि के पर्याय में इस प्रकार ही प्रगाढ़ अनुभूति-व्यंजक भाव में व्यक्त किया हैं। नारद देवलोक में देवतागणों के निकट अनायास यथातथा परिभ्रमण करते हैं इसीलिए ''देवर्षि'' नाम से विख्यात हैं। दूसरी ओर किसी भी देवता या देवी की लीला अथवा भगवत्लीला का सूत्रधर एवं लीला के अवतारणा की सूचक के रूप में नारद की भूमिका चिर प्रसिद्ध है। यथा – नारद के निकट राम-चरित्र श्रवण करके ही महर्षि वाल्मिकी ने रामायण की रचना करना शुरु किया था। रामायण में है कि राम-अवतार-काल में नारद श्रीराम के वन गमन के समय वशिष्ठ के पार्श्व में उपस्थित थे। तुलसीदास के राम-चरित मानस में है कि सीता देवी ने रामचन्द्र को पतिरूप में पाने के लिए जब देवी भवानी के निकट पूजा-प्रार्थना की थी तब देवी भवानी ने आविर्भूत होकर सीता को वर प्रदान करते हुए कहा था –''सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूरि हि मन कामना तुम्हारी। नारद वचन सदा सुचि साचा। सो वरु मिलिहि जाहिँ मनु राचा।।'' इस श्लोक में कहा गया है कि 'नारद के वचन सदा शुचि एवं सत्य है'। तत्पश्चात् द्वापर युग के समय श्रीकृष्ण अवतार धारण करने के बाद देखा जाता है कि व्रजमंडल में नारद श्रीकृष्ण व श्रीराधिका को शैशवावस्था में दर्शन करने गए थे। व्रजपुर के राजगृह से सारे व्रजवासियों के घर-घर में वे विष्णुज्ञान से पूजित हुए थे। इस समस्त क्षेत्र में ही ब्रह्मर्षि नारद के ऋषिरूप का अवतारत्व का परिचय पाया जाता है।

–हिन्दी अनुवाद : मातृचरणाश्रिता श्रीमती ज्योति पारेख